• श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः •

सर्वं पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेनकथासु यः ।
नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ।

भागवत-पत्रिका

अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ।

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक ।
भक्ति अधोक्षज की अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥

सब धर्मों का श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर ।
किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो श्रम व्यर्थ सभी केवल बंचनकर ।

वर्ष ११ | गौराब्द ४८०, मास—मधुसूदन ९, वार—कारणोदशायी, बृहस्पतिवार, ३१ चैत्र, सम्वत् २०२३, १४ अप्रैल, १९६६ | संख्या ११

श्रीश्रीगोपीनाथ-देवाष्टकम्

[श्रील-विश्वनाथ-चक्रवर्त्ति-ठक्कुर-विरचितम्]

आस्ये हास्यं तत्र माध्वीकमस्मिन् वंशी तस्यां नाद-पीयूष-सिन्धुः ।
तद्वीचीभिर्मज्जयन् भाति गोपी - गोपीनाथः पीनवक्षा गतिर्नः ॥१॥

शोणोष्णीष-भ्राजि-मुक्ता स्रजोद्यत्-पिच्छोत्तंस-स्पन्दनेनापि नूनम् ।
हृन्नेत्राली-वृत्ति-रत्नानि मुञ्चन् गोपीनाथः पीनवक्षा गतिर्नः ॥२॥

बिभ्रद्वासः पीतमुष्णकाम्या-ढिलाटं भास्वत्-किङ्किणीकं नितम्बे ।
सव्याभीरी - चुम्बित-प्रान्तबाहु - गोपीनाथः पीनवक्षा गतिर्नः ॥३॥

गुञ्जा-मुक्ता-रत्न - माङ्गल्यहारैः - मल्लैः कंठे लम्बमानैः क्रमेण ।
पीतोदञ्चत् - कञ्चुकेनान्वित श्री-गोपीनाथः पीनवक्षा गतिर्नः ॥४॥

श्वेतोष्णीषः श्वेतसुश्लोकधौतः सुश्वेतस्रक् द्वित्रशः श्वेतभूषः ।
चुम्बन् श्यामिङ्गुलारात्रिके हृद् - गोपीनाथः पीनवक्षा गतिर्नः ॥५॥

श्रीवत्स-श्री-कौस्तुभोद्भिन्नरोम्नां वर्णैः श्रीमान् यश्चतुर्भिः सन्देष्टः ।
दृष्टः प्रेम्णैवैष धन्यैरनन्यै - र्गोपीनाथः पीनवक्षा गतिर्नः ॥६॥
तापिञ्छः किं हेमवल्लीयुगान्तः ? पार्श्वद्वन्द्वोद्योतिविद्युद्घनः किं ? ।
किम्वा मध्ये राधयोः श्यामतेन्दु-र्गोपीनाथः पीनवक्षा गतिर्नः ॥७॥
श्रीजाह्नव्या मूर्तिमान् प्रेमपुञ्जो दीनानाथान् दर्शयन् स्वं प्रसीदन् ।
पुष्णन् देवालम्यफेलासुधाभि - र्गोपीनाथः पीनवक्षा गतिर्नः ॥८॥
गोपीनाथस्याष्टकं तुष्टचेता - स्तत्पादाब्ज - प्रेम - पुष्टिभविष्णुः ।
योऽधीते तन्मन्तुकोटीरपश्यन् गोपीनाथः पीनवक्षा गतिर्नः ॥९॥

अनुवाद—

जो सुमधुर मुसकान युक्त होठोंपर मुरली धारण करते हैं और उस वंशीध्वनिरूप सुधासागर की तरंगोंमें व्रजाङ्गनाओंको आप्लावित करते हुए परम शोभाको प्राप्त होते हैं, वे विशाल-वक्षःस्थल वाले श्रीगोपीनाथदेव हमारे आश्रय हों ॥१॥

जो अपने लाल रंगकी पगड़ीमें शोभामान मुक्ता-माला द्वारा देदीप्यमान मयुरपुच्छ रूप शिरोभूषणके इषत् कम्पनसे ही भक्तोंके हृदय और नेत्रोंकी वृत्ति-रूप रत्नोंको अर्थात् मनके चिन्तन आदि तथा नेत्रों के दर्शन आदि व्यापारोंको हरण (बन्द) कर लेते हैं, वे विशाल वक्षःस्थलवाले श्रीगोपीनाथ-देव हमारे आश्रय हों ॥२॥

जो अपने दोनों जंघोंकी अपूर्व कान्तिच्छटासे आलिङ्गित पीतवसन और कटि प्रदेशमें देदीप्यमान किङ्किनी धारण करते हैं और वंशी, और अवस्थिता श्रीमतीराधिका जिनके वाम हस्तके मूलका चुम्बन करती हैं, वे विशाल वक्षःस्थलवाले श्रीगोपीनाथ-देव हमारे आश्रय हों ॥३॥

जिनके गलेमें गुञ्जा, मुक्ता, रत्न, सोनेका हार और मालायें क्रमशः झूलते रहते हैं और जो चमकते हुए पीतवस्त्र द्वारा मनोहर शोभा धारण करते हैं, वे विशाल वक्षःस्थलवाले श्री-गोपीनाथ-देव हमारे आश्रय हों ॥४॥

जो मस्तकपर श्वेत रंगका शिरोभूषण धारण करते हैं, विशुद्ध उत्तम यश-वर्द्धक स्तव आदि द्वारा स्नान करते रहते हैं, सुन्दर शुभ्र माला धारण करते हैं और जो श्वेत रंगका परिधेय वस्त्र, पगड़ी और अङ्गावरण (कुर्ता) आदि दो-तीन भूषणोंसे युक्त होकर रात्रिकालीन मङ्गलारतिके समय दर्शन-कारी भक्तोंके चित्तको आकर्षण करते हैं, वे विशाल वक्षःस्थलवाले श्रीगोपीनाथ - देव हमारे आश्रय हों ॥५॥

जो श्रीवत्स, श्री, कौस्तुभ और अङ्गस्थ असा-धारण रोमावली—इन चारोंसे सुशोभित रहते हैं तथा भक्तजन द्वारा सदैव पूजित होते हैं तथा ऐकान्तिक परमसौभाग्यवान भक्तोंको प्रेमद्वारा दर्शन देते हैं, वे विशाल वक्षःस्थलवाले श्रीगोपीनाथ-देव हमारे आश्रय हों ॥६॥

क्या यह दो स्वर्णलताओंके मध्यवर्ती तमालका वृक्ष है ? अथवा यह दोनों ओर उदीप्त तड़ितके

मध्यस्थित नील मेघ है अथवा दो चमकीले नक्षत्रोंके बीच कालाचन्द्र (कृष्ण-चन्द्र) है ? जो (अपने दर्शन दानसे) दर्शकोंके चित्तमें इस प्रकारके संशयास्पद होते हैं, वे विशाल वक्षःस्थलवाले श्री-गोपीनाथ देव हमारे आश्रय हों ॥७॥

जो श्रीजाह्नवी देवीके साक्षात् प्रेम-पुञ्ज-स्वरूप हैं और जो दीन और अनाथोंको अपनी श्रीमूर्त्ति दर्शन कराया करते हैं तथा उनके प्रति सदैव सुप्रसन्न होकर देवदुर्लभ अपने अधरामृत द्वारा उनका पोषण किया करते हैं, वे विशाल वक्षःस्थलवाले श्रीगोपीनाथ-देव हमारे आश्रय हों ॥८॥

श्रीगोपीनाथ-देवके श्रीचरणकमलोंके प्रेमसे पुष्ट होने की इच्छा रख कर सन्तुष्ट चित्तसे श्रीगोपीनाथ देवके इस अष्टकका नित्य पाठ करनेवालोंके समस्त अपराधोंको क्षमाकर जो उन्हें प्रेमदान किया करते हैं, वे ही विशाल वक्षःस्थलवाले श्रीगोपीनाथ-देव हमारे आश्रय हों ॥९॥

दीक्षित

यजुर्वेदके उन्नीसवें अध्यायके तीसवें मण्डलमें कहा गया है—

"व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणम् ।
दक्षिणाच्छ्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते ॥"

अर्थात् श्रीगुरुदेवकी सेवारूपी व्रतद्वारा जीव दीक्षा प्राप्त करता है और दीक्षाके द्वारा दक्षिण अर्थात् सरलता या निष्कपटताकी प्राप्ति होती है। सरलताके द्वारा श्रद्धाका उदय होता है और श्रद्धाके द्वारा एकमात्र वास्तव सत्यवस्तु भगवान्‌की उपलब्धि होती है । अतएव उक्त वेदवाक्यसे यही प्रमाणित होता है कि एकमात्र दीक्षित व्यक्ति ही सत्यकी उपलब्धि करनेमें समर्थ है । पुराणोंमें और स्मृतिशास्त्रोंमें उक्त वेदवाक्यकी पुष्टि करते हुए कहा गया है—

"दिव्य ज्ञानं यतो दद्यात् कुर्यात पापस्य संक्षयम् ।
तस्माद्दीक्षेति सा प्रोक्ता देशिकैस्तत्त्वकोविदैः ॥"

अर्थात जिस अनुष्ठानके द्वारा जीव दिव्यज्ञान या सम्बन्ध ज्ञान प्राप्त करते हैं और जिस ज्ञानके उदय होनेसे समस्त प्रकारकी पापराशियाँ सम्पूर्ण रूपसे नष्ट हो जाती हैं, तत्त्वविद्‌गण उसी क्रिया अथवा अनुष्ठानको दीक्षा कहते हैं ।

वेदोंमें सद्‌गुरुसे दीक्षाप्राप्त व्यक्तिको ब्राह्मण कहा गया है । ऐतरेय ब्राह्मण ३४ अ० में कहा गया है—

"यथैतद्ब्राह्मणस्य दीक्षितस्य ब्राह्मणो दीक्षिष्टेति दीक्षामावेद-यन्त्येवमेवैतत् क्षत्रियस्य ॥"

अर्थात् जिस प्रकार ब्राह्मणकुलमें उत्पन्न मनुष्य को दीक्षाके समय "मैं अमुक ब्राह्मण दीक्षा ग्रहण कर रहा हूँ" ऐसा कह कर गुरुके निकट निवेदन करना होता है, उसी प्रकार क्षत्रियकुलमें उत्पन्न मनुष्य भी "मैं अमुक ब्राह्मण हूँ" ऐसा कहकर निवेदन करते हैं । उक्त श्रुतिके भाष्यमें आपस्तम्ब-

सूत्र-वचनके द्वारा दीक्षित व्यक्तिका ब्राह्मणत्व और भी स्पष्टरूपसे दिखलाया गया है—"ब्राह्मणो वा एष जायते यो दीक्ष्यते।"

दीक्षित व्यक्ति ब्राह्मण हैं। पुराण, इतिहास आदि शास्त्रसमूह वेदके अर्थको पूरण करते हैं और अर्थको और भी स्पष्टरूपसे प्रकाश करते हैं। इसी लिये तत्त्वसागरमें कहते हैं—

यथा काञ्चनतां याति कांस्यं रसविधानतः ।
तथा दीक्षाविधानेन द्विजत्वं जायते नृणाम् ॥

अर्थात् जिस प्रकार रासायनिक प्रक्रिया द्वारा किसी विशेष रसके संयोगसे काँसा, स्वर्ण बन जाता है, उसी प्रकार वैष्णवी दीक्षाके द्वारा मनुष्यमात्र ही द्विजत्वको प्राप्त होते हैं। कोई 'द्विजत्व' शब्दसे द्विजाति क्षत्रिय या वैश्यको न समझ ले, इस आशंकासे श्रील सनातन गोस्वामीपादने उक्त श्लोक की टीकामें कहा है—"नृणां सर्वेषामेव द्विजत्वं विप्रता।" अर्थात् 'नृणां' शब्दका अर्थ 'मनुष्यमात्र ही' है और 'द्विजत्व' शब्दका अर्थ 'विप्रता' है। यह द्विजत्व या ब्राह्मणत्व च्युतगोत्रमूलक नहीं है, परन्तु अच्युतगोत्रीय है। च्युतगोत्रीय द्विजोंको श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्धमें प्राकृत भगवद्विमुख बद्धजीव कहा गया है और अच्युत गोत्रीय व्यक्तियों को निर्गुण ब्राह्मण कहा गया है। अच्युत गोत्रीय व्यक्तियोंके निकट च्युतगोत्रीय द्विज यदि प्रणत होकर शिष्यत्व ग्रहण करें, तो दीक्षाप्रभावसे अच्युतगोत्रीय द्विज होनेका उन्हें अधिकार है—ऐसा 'नृणां' शब्दके द्वारा जाना जाता है। अतएव वैष्णवी दीक्षाके प्रभावसे जीवमात्र ही विप्रत्व लाभ करता है। क्योंकि "भक्त्यौ नृमात्रस्याधिकारिता" अर्थात् भक्तिमें मनुष्यमात्रका ही अधिकार है। प्राचीन ऐतिह्य (इतिहास) में इसके अनेकों प्रमाण हैं। काशीखण्डमें कहा गया है—

अन्त्यजा अपि तद्राष्ट्रे शंखचक्राङ्कधारिणः ।
संप्राप्य वैष्णवीं दीक्षां दीक्षिता इव संबभुः ॥

मयूरध्वज प्रदेशमें अन्त्यज जातिके व्यक्ति भी वैष्णवी दीक्षामें दीक्षित होकर ताप-पुण्ड्रादि संस्कार प्राप्त कर याज्ञिककी भाँति शोभा पाते हैं। सम्प्रदाय के आचार-विचारको भलीभाँति जाननेवाले व्यक्तिमात्र ही यह जानते हैं कि रामानुजीय वैष्णवगण शूद्रकुलोद्भुत बालकों भी दीक्षाके पश्चात् ब्राह्मण संस्कार प्रदान करते हैं। इसीलिये श्रील गोपाल भट्ट गोस्वामीपाद द्वारा रचित 'संस्कारदीपिका' ग्रन्थमें कहा गया है—"श्रीरामानुजाचार्यादीनां मतावलम्बिनो वैष्णवाः प्रथमं यागादिस्थानं विधाय यान् कान् शूद्राऽदिबालकादीनपि संगृह्य क्षौरादिकं कारयित्वा स्वयं विष्णुहोमादिकं कृत्वा पूर्वाचार्यादीन् विधिवत् संपूज्य च तान् बालकादिकान् पञ्च संस्कारान् धारयित्वा द्विजत्वमासाद्य पश्चात् याज्ञवल्क्यादिकृतपद्धति - मतानुसारेण गर्भाधानाद्युपनयनान्तान् संस्कारान् कारयित्वा वेदमातरं सावित्रीमपि दीक्षयित्वा पश्चात् स्वसम्प्रदायिमंत्रश्च दीक्षयित्वा श्रीगुर्वादीन् शालग्रामादीनप्यर्चयित्वा **** संन्यासिनं कुर्वन्तीति प्रसिद्धं सर्वेदृष्टं श्रुतञ्चेति।" समस्त सात्वत-तन्त्रोंमें नारदपञ्चरात्र सर्वश्रेष्ठ है। इस सात्वतन्त्रमें भी इस उक्तिका प्रमाण पाया जाता है।

स्मृतिराज हरिभक्तिविलासमें द्वितीय विलासके १५०वीं संख्यामें स्पष्ट ही कहा गया है—

"गर्भाधानादिकाश्चैव क्रियाः सर्वाश्च कारयेत् ।" टीका में "आदिशब्देन पुंसवन सीमन्तोन्नयन-जात-कर्म-नामकरणान्नप्राशन-चौड़ोपनयन-स्नान-विवाहाख्याः ।"

अर्थात् दीक्षाप्रार्थी व्यक्तिको गुरुदेव दस प्रकार के संस्कारोंसे संस्कृत करेंगे। इसलिये दीक्षित व्यक्ति उपवीत अवश्य धारण करेंगे।

कोई-कोई अकिञ्चन परमहंस वैष्णव भागवती दीक्षा प्राप्त कर निर्गुण ब्राह्मणताकी चरम परिणति रूप वैष्णवतामें प्रतिष्ठित होनेके कारण उपवीत धारण करनेकी आवश्यकता नहीं समझते और किसी-किसीने शास्त्रवाक्यका सम्मान करते हुए दीक्षाकालमें उपवीत ग्रहण करने पर भी अपनी उत्तम भक्तियोगाश्रित अवस्थाको लक्ष्य कर शास्त्रानुयायी उपवीत आदि आश्रम-चिह्नोंको धारण करनेमें उदासीनता दिखलायी है। इसीलिये ब्रह्मोपनिषद्में कहा गया है—

बहिः सूत्रं त्यजेद्विद्वान् योगमुत्तममास्थितः ।
ब्रह्म भावमयं सूत्रं धारयेत् यः स चेतनः ॥

अर्थात् उत्तम भक्तियोगाश्रित, तत्त्वविद् परमहंस पुरुष बाहरी सूतका त्याग करेंगे। ऐसी दशामें जो व्यक्ति ब्रह्मभावमय सूत्र धारण करते हैं, वे ही वास्तवमें ज्ञानी हैं। जो व्यक्ति ब्रह्मके साथ सर्वदा सम्बन्ध युक्त रहते हैं, उन्हें ब्रह्मसूत्रकी आवश्यकता क्या है? जिन लोगोंका ब्रह्मके साथ योग या सम्बन्ध नहीं हुआ है, उन्हें श्रीगुरुदेव ब्रह्मसूत्ररूप स्मारकचिह्न प्रदान कर उनके द्वारा उन्हें सदा-सर्वदा परब्रह्मसे युक्त होनेका उपदेश प्रदान करते हैं।

किन्तु वर्त्तमान "कालः कलिः" है। परमहंस पुरुषोंके स्वतन्त्र आचरणको देखकर मात्सर्यपरायण व्यक्ति वैष्णवोंको शूद्र कहनेका अवसर ढूँढ़ते हैं। श्रुति, स्मृति, पुराण, इतिहास अथवा किसी भी शास्त्रमें कहीं भी वैष्णव या भगवद्भक्त शूद्र हैं—ऐसा उल्लेख नहीं मिलता। कैमुतिक न्यायके अनुसार सर्वत्र ही वैष्णवोंको ब्राह्मणोंका गुरु कह कर ही स्वीकार किया गया है और पूर्व महाजनोंके आचरण द्वारा यह और भी विशेषरूपसे प्रमाणित होता है।

परमहंस वैष्णवोंके गुरु हो सकते हैं—इसे दिखलानेके लिये श्रील नरोत्तम ठाकुर महाशयने शौक्र कायस्थकुलमें जन्म ग्रहण करने पर भी श्रीगङ्गानारायण चक्रवर्त्ती, श्रीरामकृष्ण भट्टाचार्य आदि अनेक शौक्र ब्राह्मणोंको अपना शिष्य बनाया। सद्गोपकुलमें उत्पन्न श्रील श्यामानन्द प्रभुके निकट करणवंशीय श्रीरसिकानन्द प्रभुने दीक्षा ग्रहण की। उनके वंशीय व्यक्तियोंके निकट पण्डा पड़िहारी विप्रोंके प्रणम्य शासन ब्राह्मणोंने दीक्षा ग्रहण की एवं श्रीदास गदाधरके निकट काटवाके श्रीयदुनन्दन चक्रवर्त्तीने पाञ्चरात्रिकी दीक्षा ग्रहण की। बड़गाछिके निवासी नवनीहोड़ने दक्षिण राढ़ीय कायस्थ कुलमें उत्पन्न होकर भी दीक्षितोंके चिह्नस्वरूप उपनयन संस्कारको ग्रहण किया और शौक्र ब्राह्मणादि वर्णोंके भी आचार्य हुए। श्रीखण्डके मुकुन्दवंशमें दीक्षितों द्वारा यज्ञोपवीत धारण-प्रथा बहुत पहलेसे चली आ रही है। उनकी उपवीत ग्रहण-प्रथा अम्बष्ठदेवका संस्कार नहीं है। क्योंकि सन् १८८१ में सर्वप्रथम पूर्वबङ्गमें अम्बष्ठदेवसे उपवीत

ग्रहण-प्रथाका प्रचलन हुआ । इसके पूर्वसे ही ये लोग उपवीत ग्रहण कर आचार्यका कार्य करते थे । श्यामानन्द प्रभुके शिष्य श्रीरसिकानन्द प्रभुके वंशमें भी दीक्षित व्यक्तियोंमें उपवीत धारणकी प्रथा बहुत पूर्व से ही चली आ रही है । रसिकानन्द प्रभुके चतुर्थ अधस्तन गौड़ीय वेदान्ताचार्य श्रीपाद बलदेव विद्याभूषणने शौक्र खण्डाइत या किसानके कुलमें उत्पन्न होकर भी विप्रोपवीत ग्रहण किया था । श्रील विश्वनाथ चक्रवर्त्ती ठाकुरके निकट उन्होंने अध्ययन किया था और उन्हींकी आज्ञासे ही उन्होंने वेदान्तके गोविन्द भाष्यकी रचना की । इसके अलावा उन्होंने कुछ उपनिषदोंके भाष्योंकी भी रचना की । श्रील विश्वनाथ चक्रवर्त्ती ठाकुर यदि शूद्रकुलोत्पन्न दीक्षित व्यक्तिका उपवीत-ग्रहण और वेद-पाठमें अनधिकार समझते तो वे स्वयं बलदेव विद्याभूषण को अध्ययन नहीं कराते या वेदान्त भाष्य रचना करनेका आदेश नहीं देते । किन्तु आजकल गुरु-ब्रुवगगण शिष्यके दीक्षित होने पर भी उसे शूद्र समझते हैं और दीक्षितोंके साथ अस्पृश्य शूद्रोंकी तरह आचरण करते हैं । वे लोग तथाकथित दीक्षितोंके हाथका जल तक नहीं ग्रहण करते, शालग्राम पूजा करनेका अधिकार नहीं देते, शिष्यके द्वारा पूजित श्रीमूर्त्तिको शूद्रका ठाकुर अर्थात् शूद्रों के स्पर्शसे वह शूद्र हो गया है—ऐसा मानकर प्रणाम करनेमें हिचकते हैं । दीक्षित (?) शिष्यको श्रीमूर्त्तिके समीपमें पकवान भोग देनेका अधिकार नहीं देते, केवल वार्षिक दक्षिणादिके समय शिष्यों को दीक्षित समझते हैं और सब व्यक्तियोंके निकट प्रचार करते हैं । इसीलिये ये सभी गुरुब्रुव हैं । ब्राह्मणब्रुवोंके द्वारा दीक्षित व्यक्ति 'यथा पूर्व तथा परं' रह जाते हैं । परन्तु जो व्यक्ति श्रीमद्भागवतमें कहे वास्तव सत्यकी उपलब्धि करना चाहते हैं, वे सद्गुरुके निकट दीक्षित होकर अवश्य ही विप्रत्व प्राप्त करते हैं, वेदमें अधिकार पाते हैं और गुरु-चरणाश्रय कर भजन करते-करते ब्राह्मणत्व और योगित्वको क्रोड़ीभूत रखनेवाले वैष्णवत्वरूप चरम पद तक पहुँचकर उस परमपद पर अधिरूढ़ होकर कृतकृतार्थ होते हैं । इसलिये बृहदारण्यक उपनिषद् में कहते हैं—

"तमेव धीरो विज्ञाय प्रज्ञां कुर्वीत ब्राह्मणः ।"

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील सरस्वती ठाकुर

प्रश्नोत्तर

(श्रीकृष्णनाम तत्त्व)

[गतांक के आगे]

१३. मुक्तावस्थामें हरिनामकी क्या आवश्यकता है ? ऐकान्तिकी नामाश्रया भक्ति कैसे होती है ?

"कृष्णनामको छोड़कर जीवका अन्य कोई धन अथवा गति नहीं है। शुद्ध जीव मुक्तावस्थामें श्री-वैकुण्ठमें सदा-सर्वदा हरिनामका गान करते हैं।** अपराधशून्य न होनेसे कदापि नामका एकान्त आश्रय प्राप्त नहीं होता है।"

—'नामके बलपर पाप-प्रवृत्ति एक नामापराध है', स. तो. ८।६

१४. महाप्रभुजीका क्या उपदेश है ?

"श्रीमन्महाप्रभुजीने जीवनको कृष्णनाममय करनेका उपदेश दिया है। कृष्णनामको छोड़कर इस संसारमें और कोई सत्यवस्तु नहीं है।"

—'श्रीकृष्णनाम' स. तो. ११।५

१५. श्रीचैतन्य महाप्रभुने किस प्रकार जीवोंका उद्धार किया ?

"केवलमात्र कृष्णनाम देकर और कृष्णनामका उच्चारण करवाकर श्रीमन्महाप्रभुजीने जीवोंका उद्धार किया।"

—'श्रीकृष्णनाम' स. तो. ११।५

१६. सर्वसिद्धि कैसे होती है ?

"प्रभुकी वाणियोंमें दृढ़ विश्वास कर श्रीगुरु-कृपाबलसे यदि शुद्ध कृष्णनाम किया जाय, तो सर्वसिद्धि हो सकती है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।"

—'श्रीकृष्णनाम' स. तो. ११।५

१७. श्रीमूर्त्तिके प्रति अपराध कैसे नष्ट होता है?

"कृष्णेर श्रीमूर्त्ति-प्रति अपराध करि।
नामाश्रये सेइ अपराध जाय तरि॥

अर्थात् हरिनाम कीर्तन करनेसे श्रीमूर्त्तिके प्रति किया हुआ अपराध नष्ट हो जाता है।"

—भ. र. 'द्वितीय याम-साधन'

१८. श्रीकृष्णके नाम-रूप-गुण-लीलादि क्या जीवोंके प्राकृत देह और इन्द्रियों द्वारा ग्रहण किये जा सकते हैं ?

"जीवोंके प्राकृत देह और इन्द्रियोंके द्वारा शुद्ध-सत्त्वमय कृष्णके नाम-रूप-गुण-लीलादि—यह सब अनुभूत नहीं होता। कृष्णने कृपा कर उन-उन तत्त्वों को जीवोंके मङ्गलके लिये प्रत्यक्षरूपसे इस जगतमें प्रकटित किया है। प्रत्यक्षरूपसे ही चित्तत्त्व का स्वप्रकाश भाव है।"

—'नाम-माहात्म्य-सूचना' ह. चि.

१९. नाम कैसे रूपको प्रकाश करते हैं ?

"नामरूप कलिका किंचित् प्रस्फुटित होने पर कृष्णादि मनोहर चिन्मय रूप उदित होते हैं।"

—"भजन-प्रणाली', ह. चि.

२०. नाम किस प्रकार गुणको प्रकाश करते हैं?

"पुष्पोंकी सौरभकी तरह खिले हुए नामरूपी-कलिकामें चौसठ प्रकारके गुण-सौरभका अनुभव प्राप्त होता है।"

—'भजन-प्रणाली', ह. चि.

२१. नाम किस प्रकार लीला-प्रकाश करते हैं ?

"नाम कुसुमके पूर्ण प्रस्फुटित होने पर कृष्णकी अष्टकालीय चिन्मय नित्य-लीला प्रकृतिसे अतीत होने पर भी जगतमें उदित होती हैं।"

—'भजन-प्रणाली', ह. चि.

२२. क्या विरह और सम्भोग–दोनों समय ही हरिनाम आस्वादनीय हैं ?

"विरह और संभोग–दोनों ही अवस्थाओंमें नाम भावना भेद से नित्य आस्वाद्य हैं।"

—'प्रमाद', ह. चि.

२३. गोलोकस्थ और भूलोकस्थ काम बीजमें पार्थक्य क्या है ?

"गोलोकमें अवस्थित कामबीज विशुद्ध चिन्मय है और प्रपञ्चमें स्थित कामबीज छायाशक्तिगत कालादि शक्तिका कामबीज है।"

—ब्र. स. ५।८

२४. कृष्णकी वंशीध्वनि क्या वस्तु है ?

"कृष्णकी मुरलीध्वनि सच्चिदानन्द शब्दविशेष है। वेदोंका समस्त आदर्श उसमें वर्त्तमान होता है।"

ब्र. स. ५।२७

२५. सोलह नामके अष्टयुगल किस प्रकार अष्ट-कालीय लीलामें शिक्षाष्टकके साथ अनुशीलनीय हैं ?

"हरे कृष्ण सोल नाम अष्टयुग हय।
अष्टयुग अर्थ अष्ट श्लोक प्रभु कय।
आदि हरेकृष्ण अर्थ - अविद्या - दमन।
श्रद्धार सहित कृष्णनाम - संकीर्त्तन॥
आर हरे कृष्ण नाम-कृष्ण सर्वशक्ति।
साधुसंगे नामाश्रये ज्ञानानुरक्ति॥
सेइत भजनक्रमे सर्वानर्थ नाश।
अनर्थानगमे नामे निष्ठार विकाश।
तृतीये विशुद्ध भक्त चरित्रेर सह।
कृष्ण कृष्ण-नाम निष्ठा करे अहरह।
चतुर्थेते अहैतुकी भक्ति उद्दीपन।
रुचि सह हरे हरे नाम - संकीर्त्तन॥
पञ्चमेते शुद्धदास्य आसक्ति सहित।
हरेराम संकीर्त्तन स्मरण विहित॥
षष्ठे भावांकुरे हरेरामेति कीर्त्तन।
संसारे अरुचि, कृष्णे रुचि समर्पण॥
सप्तमे मधुरासक्ति राधापदाश्रय।
विप्रलम्भे राम राम - नामेर उदय॥
अष्टमे व्रजेते अष्टकाल गोपीभाव।
राधाकृष्ण - प्रेमसेवा प्रयोजन लाभ॥"

च. र. प्रथम नामसाधन

"अर्थात् हरेकृष्ण सोलह नामके अष्टयुग हैं। अष्टयुगके तात्पर्यमें आठ श्लोक हैं। पहले 'हरे कृष्ण' नामका तात्पर्य है—श्रद्धाके सहित कृष्णनाम संकीर्त्तन करनेसे अविद्याका दमन होता है। दूसरे 'हरे कृष्ण' नामका तात्पर्य है—कृष्णमें सभी शक्तियाँ हैं और साधुसंगमें नामाश्रय ग्रहण करने पर ज्ञानानुरक्ति होती है। उस भजनके द्वारा सब प्रकारके अनर्थोंका नाश हो जाता है और अनर्थोंके

दूर होने पर नाममें निष्ठा पैदा होती है। तीसरे 'कृष्ण कृष्ण' नामका तात्पर्य है—विशुद्ध भक्तोंके साथ सदा-सर्वदा नाम ग्रहण करने पर नामके प्रति निष्ठा प्रगाढ़ हो जाती है। चतुर्थ 'हरे हरे' नामका तात्पर्य यह है कि रुचिके साथ नाम-संकीर्त्तन करने पर अहैतुकी भक्तिका उदय होता है। पाँचवें 'हरे राम' नामका तात्पर्य यह है कि आसक्तिपूर्वक नाम-संकीर्त्तन और नाम स्मरण करनेसे शुद्धदास्य भाव का उदय होता है। छठवें 'हरे राम' नामका तात्पर्य है—आसक्ति सहित नाम करनेसे भावांकुरका उदय होता है। भावांकुरके उदय होनेपर संसारके प्रति अरुचि पैदा हो जाती है और कृष्णके चरणोंमें सम्पूर्ण रुचि हो जाती है। सातवें "राम राम" नामका तात्पर्य यह है कि विप्रलम्भ भावसे युक्त नामका उदय होने पर मधुरासक्ति होती है और राधापदाश्रयकी प्राप्ति होती है। आठवें 'हरे हरे' नामका तात्पर्य यह है कि शुद्ध नामके प्रभावसे गोपीभाव की प्राप्ति होती है और व्रजमें अष्टकालीय राधाकृष्ण-प्रेमसेवारूप परम प्रयोजनकी प्राप्ति होती है।"

२६. आकर्षक - वाचक श्रीकृष्णनाम ही परम मुख्यतम क्यों हैं ?

"किसी एक बृहत् गुणको लक्ष्य कर सभी भक्तों ने भगवानका नामकरण किया है। ब्रह्म, परमात्मा, नारायण आदि नाम ही बृहत्गुण वाचक हैं। इन गुणोंद्वारा जीव और ईश्वरका सम्पूर्ण सम्बन्ध निरूपित नहीं होता। भक्ति रागरूपा हैं और जीव एवं ईश्वर—इन दोनोंकी मध्यवर्त्तिनी सम्बन्ध स्थापित करनेवाली अप्राकृत रज्जुविशेष हैं। इनके द्वारा ही ईश्वरके प्रति जीव अनन्त प्रकारसे आकर्षित होते हैं। अतएव सम्बन्ध सूत्रमें आकर्षण ही ईश्वरका एकमात्र उत्कृष्ट प्रकाश है। कृष्ण आकर्षण-शब्द वाचक हैं। अतएव उपासना-तत्वमें जीवोंका कृष्णके साथ ही शुद्ध नित्य सम्बन्ध है।"

त० सू० ४०वाँ सूत्र

(क्रमशः)

—जगद्गुरु श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

भक्तकी उत्कण्ठा

या द्रौपदी परित्राणे या गजेन्द्रस्य मोक्षणे ।
मय्यार्ते करुणामूर्ते ! सा त्वरा क्वा गता हरे ?

श्रीओन्कल नामक भक्त कहते है—हे करुणामूर्ते हरे ! द्रौपदीकी रक्षाके समय और गजेन्द्रको मुक्त करनेके समय आपकी जो उतावली थी, वह मुझ आर्त दीन के समय कहाँ चली गई ?

(पद्यावली से)

सन्दर्भ-सार

(श्रीकृष्ण-सन्दर्भ ५)

श्रीकृष्ण स्वयं भगवान् हैं। जिनकी भगवत्तासे दूसरोंकी भगवत्ता सिद्ध है, उस मूल सर्वकारण-कारण भगवान्‌को ही स्वयं भगवान् कहते हैं। श्रीकृष्ण ही सम्पूर्ण अवतारोंके मूल अवतारी या अंशी हैं। श्रीकृष्ण ही (१) लीलावतारोंके मूल हैं, (२) गुणावतारोंके मूल हैं, (३) पुरुषावतारोंके मूल हैं तथा (४) वे ही महावक्ताओं और महाश्रोताओंके मूल उद्दिष्ट वस्तु हैं—इन चारों वक्तव्योंकी सप्रमाण स्थापना द्वारा यहाँ श्रीकृष्णकी स्वयं-भगवत्ता दिखलायी जा रही है।

(१) श्रीकृष्णका लीलावतार कर्तृत्व

देवगण देवकीके गर्भगत श्रीकृष्णका स्तव करते हुए कह रहे हैं—

> मत्स्याश्व-कच्छप-नृसिंह-वराह-हंस-
> राजन्य-विप्र-विबुधेषु कृतावतारः।
> त्वं पासि नस्त्रिभुवनञ्च यथाधुनेश
> भारं भुवो हर यदूत्तम वन्दनं ते॥
>
> (भा. १०।१४०)

—प्रभो! आपने जैसे अनेकों बार मत्स्य, हयग्रीव, कच्छप, नृसिंह, वराह, हंस, राम, परशुराम और वामन आदि रूपोंमें अवतीर्ण होकर हमलोगोंकी और तीनों लोकोंकी रक्षा की है तथा पृथ्वीका भार हरण किया है, वैसे ही अब इस बार भी उसी लिये अवतीर्ण हुए हैं। यदुनन्दन! हम आपके चरणोंकी वन्दना कर रहे हैं।

लोक पितामह ब्रह्मा भी श्रीकृष्णके अनन्त अद्भुत ऐश्वर्यका दर्शन कर उनके श्रीचरणकमलोंमें पुनः पुनः अञ्जलि बाँधकर दण्डकी भाँति गिर-गिर कर स्तव करते हुए कह रहे हैं—

> सुरेष्वृषिष्वीश तथैव नृष्वपि
> तिर्यक्षु यादःस्वपि तेऽजनस्य।
> जन्मासतां दुर्मद निग्रहाय
> प्रभो विधातः सदनुग्रहाय च॥
>
> (भा. १०।१४।२०)

हे विधातः! हे प्रभो! आप वास्तवमें अजन्मा होनेपर भी आप देवता, ऋषि, मनुष्य, पशु-पक्षी और जलचर आदि योनियोंमें अवतार ग्रहण करते हैं—इसलिये कि इन रूपोंके द्वारा दुष्ट पुरुषोंका घमण्ड तोड़ दें और सत्पुरुषोंपर अनुग्रह करें।

महर्षि गर्गने भी श्रीकृष्णके नामकरण संस्कार के समय महाराज नन्दको यह बतलाया था—

> 'बहूनि सन्ति नामानि रूपाणि च सुतस्य ते।'

—आपके पुत्रके गुण और कर्मोंके अनुरूप उसके अनेक नाम और रूप हैं।

कुबेरके पुत्र नलकूबर श्रीकृष्णका स्तव करते हुए कहते हैं—

> यस्यावतारा ज्ञायन्ते शरीरेष्वशरीरिणः।
> तैस्तैरतुल्यातिशयैर्वीर्यैर्देहिष्वसङ्गतैः॥
>
> (भा. १०।१०।३४)

हे प्रभो ! आप प्राकृत शरीरसे रहित हैं। फिर भी जब आप ऐसे पराक्रम प्रकट करते हैं जो मत्स्य कूर्म आदि साधारण शरीरधारियोंके लिये संभव नहीं है और जिनसे बढ़ कर तो क्या, जिनके समान भी कोई नहीं कर सकता, तब उन अतुलनीय पराक्रम आदिको देख कर सज्जनगण उन शरीरों में आपके अवतारका अनुमान करते हैं। इस समय सबका कल्याण करनेवाले वही आप महापुरुष ही जीवोंको सम्पद और मोक्ष प्रदान करनेके लिये स्वयं आविर्भूत हुए हैं।

महाराज नग्नजीतकी कन्या श्रीसत्याने भी कहा है—

यत्पादपङ्कजरजः शिरसा बिभर्ति
श्रीरब्जजः सगिरिशः सह लोकपालैः।
लीलातनुः स्वकृतसेतुपरीप्सया यः
कालेऽदधत् स भगवान् मम केन तुष्येत् ॥
(भा. १०।५८।३७)

—भगवती लक्ष्मी, ब्रह्मा, शङ्कर और बड़े-बड़े लोकपाल जिनके पदपङ्कजका पराग अपने सिर पर धारण करते हैं और जिन प्रभुने अपनी बनायी हुई धर्म-मर्यादाकी रक्षाके लिये समय-समयपर अनेकों लीलावतार ग्रहण किये हैं, वे प्रभु मेरे किस धर्म, व्रत अथवा नियमसे प्रसन्न होंगे ? वे तो केवल अपनी कृपासे ही प्रसन्न हो सकते हैं।

सर्वलोक पूज्य जगद्गुरु नारदजी भी कहते हैं—

नमस्तस्मै भगवते कृष्णायाकुण्ठमेधसे।
यो धत्ते सर्वभूतानामभवायोशतीः कलाः ॥
(भा. १०।८७।४६)

उन पवित्रकीर्ति भगवान् श्रीकृष्णको नमस्कार है, जो निखिल प्राणियोंका भव-बन्धन दूर करनेके लिये कमनीय कलावतारोंको प्रकट करते हैं। इस श्लोककी श्रीधर स्वामीकी टीका इस प्रकार है—"नम इति श्रीकृष्णवतारतया नारायणं स्तौति। ऐते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयमित्युक्तेरित्येषा। अतएव तच्छ्रवणानन्तरं तस्मादेव नमस्कारात् श्रुतिस्तु तावपि श्रीकृष्ण एव स्तुत्या इत्यायातम्। तथैव श्रुतिभिरपि निभृत-मरुन्मनोजेत्यादिपद्ये निजारिमोक्षप्रदत्वाद्यसाधारणलिङ्गेन स एव व्यञ्जितः।" अर्थात् श्रीकृष्णके अवतारके रूपमें ही नारायणका स्तव किया है। क्योंकि "एते चांशकलाः" श्लोकमें निखिल अवतारोंको पुरुषका अंश और कला कहा गया है, परन्तु श्रीकृष्णको "स्वयं-भगवान" कहा गया है। श्रीधर स्वामीचरणकी व्याख्यासे ऐसा प्रतीत होता है कि देवर्षि-नारदने नारायणके पास श्रुतिस्तवको सुन करके श्रीकृष्णको नमस्कार किया; इसलिये यहाँ भी श्रीकृष्ण ही मुख्य रूपसे निर्दिष्ट हुए हैं।

श्रीकृष्णका गुणावतार कर्तृत्व

इत्युद्धवेनास्यनुरक्त-चेतसा
पृष्टो जगत्क्रीडनकः स्वशक्तिभिः।
गृहीतमूर्तित्रय ईश्वरेश्वरो
बभाष सप्रेम-मनोहरस्मितः॥
(भा. ११।२९।७)

जगत जिनका खिलौना है, जो अपनी शक्ति अर्थात् अंशावेश विभूतिद्वारा विष्णु, शिव और ब्रह्मा—इन तीन मूर्तियोंका प्रकाश करते हैं, इन ईश्वरेश्वर श्रीकृष्णमें अनुरक्त चित्तवाले उद्धव द्वारा पूछे जानेपर श्रीकृष्ण बड़े प्रेमसे मनोहर मुसकानसे युक्त होकर बोले।

पुरुषावतार-कर्तृत्व

इति मतिरुपकल्पिता वितृष्णा
भगवति सात्वतपुङ्गवे विभूम्नि ।
स्व - सुखमुपगते क्वचिद्विहर्तुं
प्रकृतिमुपेयुषि यद्भवप्रवाहः ॥

(भा. १।९।३२)

श्रीभीष्म पितामहजी श्रीकृष्णसे कह रहे हैं—मैंने विविध प्रकारके धर्म अनुष्ठान आदिके द्वारा शुद्ध और विषय-रागरहिता अपनी मति अर्थात् निश्चयात्मिका बुद्धिको श्रीकृष्णके चरणकमलोंमें समर्पित कर दिया। ये सदा-सर्वदा स्वरूपभूत परमानन्दमें परिपूर्ण होकर भी कभी-कभी क्रीड़ा करनेके लिये प्रकृतिको अङ्गीकार करते हैं। उस समय प्रकृतिसे सृष्टि-परम्परा प्रकाशित होती है। श्लोकमें आये हुए "विभूम्नि"-शब्दका अर्थ है-'विगत हुआ है भूमा जिससे अर्थात् जिससे बढ़कर कोई भी महान नहीं है, वे प्रकृतिमें अवतीर्ण होकर महाविष्णु, गर्भोदशायी और क्षीरोदशायी—ये तीन पुरुषावतारोंकी संज्ञा प्राप्त होते हैं। प्रकृतिमुपेयुषि-प्रकृतिको अङ्गीकार करते हैं। इसके द्वारा यह जाना जाता है कि इन पुरुषावतारोंके आविर्भावके कर्त्ता श्रीकृष्ण ही हैं।

भव-भयमपहर्तुं ज्ञानविज्ञानसारं
निगमकृदुपजह्रे भृङ्गवद्वेदसारम् ।
अमृतमुदधितश्चापाययद्भृत्यवर्गान्
पुरुषमृषभमाद्यं कृष्णसंज्ञं नतोऽस्मि ॥

(भा. ११।२९।४९)

—परीक्षित् ! जिस प्रकार भौंरा विभिन्न पुष्पोंसे उनका सार-सार मधु संग्रह कर लेता है, वैसे ही स्वयं वेदोंको प्रकाशित करनेवाले भगवान श्रीकृष्णने निखिल वेदोंका सार—ज्ञान-विज्ञानरूप भगवद्भक्तिसुधाको निकाल कर निवृत्तिमार्ग पर चलनेवाले भक्तोंको पिलाया था तथा समुद्रका मंथन कर उससे सुधा [अमृत] निकाल कर देवताओंको पान कराया था, मैं उन्हीं आदि पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण नामधारी भगवानको नमस्कार करता हूँ।

यस्यांशांशभागेन विश्वोत्पत्तिलयोदयात् ।
भवन्ति किल विश्वात्मंस्तं त्वाद्याहं गतिं गताः॥

(भा. १०।८५।३१)

श्रीदेवकी देवी भी श्रीकृष्णको कह रही हैं—जिनके अंश पुरुष हैं, पुरुषका अंश माया है, मायाका अंश त्रिगुण है, उस त्रिगुणके क्षुद्रातिक्षुद्र भाग परमाणुमात्रके लेश द्वारा ही विश्वकी उत्पत्ति होती है, उन सर्वकारण कारणस्वरूप सर्वादि आपकी शरण ग्रहण करती हूँ। इस श्लोकमें श्रीकृष्णको सबका अंशी कहा गया है।

"नारायणस्त्वं न हि सर्वदेहिनां" भा.१०।१४।१४—इस प्रसिद्ध श्लोकमें ब्रह्माजी श्रीकृष्णका स्तव कर रहे हैं—हे अधीश ! आप ही नारायण हैं। आप सर्वदेहियों [आत्माओं] के आत्मा [तृतीय पुरुष] हैं, अखिल लोकोंके साक्षी [द्वितीय पुरुष] हैं और नरसंभूत जो २४ तत्त्व और जल है, उनके आश्रय [प्रथम पुरुष] हैं। परन्तु ये प्रथम पुरुष मूल नारायण नहीं हैं—ये तो आपके अंश हैं, आप ही अंशी हैं। वह रूप मायिक नहीं है।

श्रीकृष्णने अघासुरको मार कर उसे मुक्ति दी।

श्रीकृष्णका ऐसा अपूर्व अद्भुत प्रभाव देखकर लोक पितामह ब्रह्मा बड़े विस्मित हुए। किसी भी अवतार या अवतारी द्वारा अघासुर जैसे पापीकी मुक्ति नहीं हुई है—यह विस्मयका कारण था। तदनन्तर श्रीकृष्णकी दूसरी महिमाओंका दर्शन करनेके लिये ब्रह्माजीने बछड़ों और गोपबालकोंका अपहरण कर उन्हें एक पर्वतकन्दरामें मायासे सुलाकर बन्द कर दिया। अनन्तर श्रीकृष्णके महदद्भुत अनन्त ऐश्वर्य की झाँकी पाकर ब्रह्माजीने विस्मित होकर श्रीकृष्ण का स्तव किया था। उनके विस्मयके दो कारण थे—[१] अघासुर जैसा साक्षात् अघ अर्थात् पाप का मूर्तिमान विग्रह भी मुक्त हो गया और [२[जीव परमाणुसे भी क्षुद्र होने से जिसे आँखोंसे नहीं जा सकता, ३३ करोड़ देवताओंके देखते-देखते श्रीकृष्णके चरणोंमें प्रवेश कर गया। श्रीकृष्णकी ऐसी महिमा देखकर ब्रह्माजी कुछ और भी दूसरी चमत्कारपूर्ण महिमाका दर्शन करनेकी इच्छासे विवेकशून्य होकर निखिल मायावियोंके भी परमाराध्य अपने प्रभुके प्रति मायाका विस्तार कर श्रीकृष्णके सखाओं तथा बछड़ोंको चुरा कर एक पर्वत-कन्दरेमें बन्द कर दिया। भक्तवत्सल भगवान गोविन्द अपने दासका दोष क्षमा कर अपना अतुलनीय माधुर्यपूर्ण ऐश्वर्य प्रकट कर ब्रह्माको दिखलाया। ब्रह्माजीने देखा—सारे-के-सारे बछड़े और गोप-बालक चतुर्भुज मूर्ति हो गये। क्या ही अपूर्व नवघनश्याम रूप जिनपर पीतकौशेय वस्त्र अतीव शोभित हो रहे हैं, मानो काले-काले मेघोंके बीच स्थिर बिजली दमक रही हो। अहो! यह क्या? अजादि शक्तियाँ, अणिमादि सिद्धियाँ, महदादि २४ तत्त्व, उनके द्वारा उत्पन्न ब्रह्माण्ड, ब्रह्माण्डके अन्तर्गत सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मादि, उनके साथ काल, स्वभाव, प्रकृति, जीव और जड़—सभी मिल कर एक-एक चतुर्भुज कृष्णकी पृथक्-पृथक् समुदाय के रूपमें उपासना कर रहे हैं। इस प्रकार करोड़ों-करोड़ों ब्रह्माण्डाधिपति श्रीकृष्ण अगणित वत्स-पालकोंके रूपमें अंशसे आविर्भूत होकर ब्रह्माजीके नयनगोचर हुए थे।

श्रीकृष्णने अपनेसे करोड़ों-करोड़ों ब्रह्माधिपतियोंको प्रकट करके दिखलाया था, इससे श्रीधर स्वामीपादने श्रीकृष्णमें सर्वशक्तिमत्ताका आविष्कार अनुभव किया था। जिस समय ब्रह्माजी करोड़ों-करोड़ों चतुर्भुज रूपोंको देख रहे थे, उस समय भी उनसे पृथक् स्वयं-भगवानके रूपमें श्रीकृष्ण विराजमान थे। श्रीस्वामीपादकी टीका पर सूक्ष्मरूपसे विचार करनेपर यह ज्ञात होता है कि उन्होंने [श्रीधर स्वामीपादने] श्रीकृष्णको ही परमाश्रयके रूपमें अङ्गीकार किया है।

> **अत्र सर्गो विसर्गश्च स्थानं पोषणमूतयः।**
> **मन्वन्तरेशानुकथा निरोधो मुक्तिराश्रयः॥**
> **दशमस्य विशुद्ध्यर्थं नवानामिह लक्षणम्**
> **वर्णयन्ति महात्मानः श्रुतेनार्थेन चाञ्जसा॥**
>
> (भा. २।१०।१-२)

अर्थात् सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण, उति, मन्वन्तर, ईशानुकथा, निरोध, मुक्ति और आश्रय—भागवतमें इन दस विषयोंका वर्णन है। इनमेंसे आश्रय-तत्त्व हैं—श्रीकृष्ण। इसे श्रीभागवत १०।१।१ श्लोककी टीकामें श्रीधरस्वामीने स्पष्ट घोषणा की है।

दशमे दशमं तत्त्वं आश्रिताश्रयविग्रहं ।
श्रीकृष्णाख्यं परं धाम जगद्धाम नमामि तत् ॥
(श्रीमद्भा. १०।१।१ श्लोककी श्रीधरस्वामीकृत टीकामें)

अर्थात् दशम स्कन्धमें आश्रितगणोंके आश्रय-विग्रह रूप श्रीकृष्णजी लक्षित हुए हैं। मैं उन्हीं श्रीकृष्ण-नामक परमधाम जगद्धामको नमस्कार करता हूँ। जिनका आश्रय करके समस्त आश्रित-तत्त्व वर्त्तमान हैं, वे मूलतत्त्व ही आश्रय हैं। सर्गसे लेकर मुक्तितक सभी आश्रित-तत्त्व हैं, इसलिये पुरुषावतार, उनके अनुगत सारे अवतार, सारी शक्तियाँ और जड़ जगत—ये सभी श्रीकृष्णरूप आश्रयके आश्रित हैं। अतएव श्रीकृष्ण ही सर्वथा निरपेक्ष सर्वतन्त्र स्वतन्त्र परतत्त्व एवं मुख्य आश्रय हैं। श्रीकृष्ण ही स्वयं-भगवान हैं।

—त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्तिभूदेव श्रौती महाराज

श्रीचैतन्य-शिक्षामृत

तृतीय वृष्टि (चतुर्थ धारा)

गौण और मुख्य विधियोंका परस्पर सम्बन्ध

स्वधर्मरूप कर्मकाण्ड और वैध शुद्धभक्तिमें क्या अन्तर है ? अच्छी तरह विचार करनेसे यह देखा जाता है कि दोनोंमें विपुल भेद है। जड़ विषयोंकी नश्वरता एवं हेयता जानकर उनके प्रति जिनको निर्वेद पैदा हो गया है, वे ज्ञानयोगके अधिकारी संन्यासी हैं। विषय भोगोंकी कामना वाले सारे मनुष्य ही कर्मयोगके अधिकारी हैं। इन दोनोंके अतिरिक्त जिन लोगोंको भगवत्तत्त्वके प्रति श्रद्धा उत्पन्न हो गयी है और साथ ही जिनमें न तो निर्वेद ही पैदा हुआ है और न कर्मोंमें अत्यधिक आसक्ति ही है, ऐसे मनुष्य भक्तिके अधिकारी हैं। (क) स्वधर्म, शरीर यात्रा, देहकी नौ अवस्थाएँ (ख) और सामाजिक क्रियाएँ कर्मकाण्ड और भक्ति पर्व दोनोंमें ही हैं; फिर भी कर्मकाण्ड और भक्ति पर्वमें बड़ा भेद है। कर्म-काण्डमें अनेक-ईश्वरसेवा, इन्द्रिय-प्रीतिरूप काम, लौकिक जड़ीय सम्मान, किसी न किसी रूपमें जीव-हिंसा, जन्मानुसार वर्ण-व्यवस्था के प्रति सम्मान आदि भक्ति विरोधी बहुतसी बातें हैं। वैध भक्त जीवनमें एकमात्र विष्णुकी सेवा, अप्राकृत विषयमें प्रीति, वृत्तलक्षणसिद्ध ब्राह्मण वैष्णव-सेवा और सभी प्राणियोंके प्रति दया रूप अहिंसा—ये कुछ लक्षण प्रबल होते हैं।

(क) निर्विण्णानां ज्ञानयोगो न्यासिनामिह कर्म्मसु। तेष्वनिर्विण्णचित्तानां कर्मयोगस्तु कामिनाम् ॥
यदृच्छया मत्कथादौ जातश्रद्धस्तु यः पुमान्। न निर्विण्णो नातिसक्तो भक्तियोगोऽस्य सिद्धिदः ॥
(भा. ११।२०।७-८)

(ख) निषेकगर्भजन्मादि बाल्यकौमारयौवनम्। वयो मध्यं जरा मृत्युरित्यवस्थास्तनोर्नव ॥ (भा. ११।२२।४७)

वर्णाश्रम-धर्म और वैधीभक्तिमें सम्बन्ध

यहाँ विवेचनीय यह है कि पहले जिस वर्णाश्रम-धर्मका उल्लेख किया गया है, उसके साथ वैधी-भक्तिका सम्बन्ध क्या है ? प्रश्न यह है कि क्या वर्णाश्रम-धर्मको छोड़ कर वैधी भक्तिको आश्रय करना पड़ता है अथवा वर्णाश्रम - धर्मका पालन करते हुए ही भक्तिका आचरण करनेके लिये वैध भक्ति मार्ग ग्रहण करना पड़ता है ? यह पहले ही कहा जा चुका है कि शुद्धा भक्तिका अच्छी तरहसे साधन करनेके लिये निरोग और बलिष्ट शरीर, उत्तम और सुसंस्कृत मानसवृत्ति, सुन्दर और निर्दोष समाज आदिकी आवश्यकता होती है और इन्हीं सबके लिये ही वर्णाश्रम - धर्मकी मुख्यरूपसे आवश्यकता है अर्थात् उत्तम रूपसे शरीर पालन, मानसवृत्तिका सुन्दर अनुशीलन और उन्नति साधन, सामाजिक कल्याण चर्चा और आध्यात्मिक शिक्षा ही वर्णाश्रम-धर्मका मुख्य तात्पर्य है। (ग) मनुष्य जब तक जड़ शरीरमें आबद्ध है, तब तक वर्णाश्रम-धर्मकी आवश्यकताको कोई भी अस्वीकार नहीं कर सकता। अस्वीकार करनेसे पूर्वोक्त चारों प्रकार की शिक्षाओंके अभावमें जीव कुपथगामी हो पड़ेगा तथा उसका किसी भी प्रकार कल्याण-साधन नहीं हो सकता। इसलिये शरीर, मन, समाज और आध्यात्मिक कल्याण-साधन करनेके लिये वर्णाश्रम-व्यवस्था को उपयुक्त विधि जानकर उसका पालन करना होगा। तब एक बात ध्यानमें रखनेकी आवश्यकता है कि वर्णाश्रम-धर्मका पालन ही जीवका चरम प्रयोजन नहीं है। चरम प्रयोजन भगवद्-भक्ति है। सुचारु रूपसे भक्तिके अनुशीलनके लिये ही वर्णाश्रम-धर्मका पालन करना प्रयोजनीय हो पड़ा है। इसलिये वर्णाश्रम-धर्मको अनुकूल रूपमें ग्रहण करके भक्तिका अनुशीलन करना चाहिये।

भक्ति अनुशीलनका सोपान

अब विचारणीय यह है कि वर्णाश्रम-धर्म जिस प्रकार दीर्घसूत्री कार्य है, उसका ठीक-ठीक पालन करनेसे भक्तिका अनुशीलन करनेके लिये अवकाश मिल भी सकता है या नहीं ?(ख) साथ ही जहाँ वर्णाश्रम-धर्म और भक्तिमें परस्पर विरोध उपस्थित हो, वहाँ क्या करना चाहिये ? सबसे पहले कहना यह है कि शरीर, मन, समाज और आध्यात्मिक सत्ताकी रक्षा और पुष्टि नहीं करने पर,अधिकतर उच्च चेष्टा—जो भक्ति है, उसकी पुष्टि और

(क) एतत् समुचितं ब्रह्मन् स्वापत्रय चिकित्सितम्। यदीश्वरे भगवति कर्म ब्रह्मणि भावितम्।
आमयो यश्च भूतानां जायते येन सुव्रत। तदेव ह्यामयं द्रव्यं न पुनाति चिकित्सितम्॥
एवं नृणां क्रियायोगाः सर्वे संसृतिहेतवः। त एवात्मविनाशाय कल्पन्ते कल्पिताः परे॥
यदत्र क्रियते कर्म भगवत्परितोषणम्। ज्ञानं यत्तदधीनं हि भक्तियोगसमन्वितम्॥
गृणन्ति गुणनामानि कृष्णस्यानुस्मरन्ति च। कुर्वाणा यत्र कर्माणि भगवच्छिक्षया सकृत्॥
(भा. १।५।३२-३६)

(ख) न ह्यन्तोऽन्तपारस्य कर्मकाण्डस्य चोद्धव। संक्षिप्तं वर्णयिष्यामि यथावदनुपूर्वशः॥ (भा. ११।२७।६)

रक्षा कैसे हो सकती है ? अत्यन्त शीघ्र ही मृत्यु हो जानेसे अथवा मस्तिष्क-विकृति आदि रोग उपस्थित होनेसे या सामाजिक विप्लवके साथ अपरिहार्य कुसङ्ग या दुराचार उपस्थित होनेसे या अप्राकृत शिक्षा नहीं मिलनेसे भक्तिका अंकुर—श्रद्धा भी हृदय में अंकुरित होनेका सुअवसर भी कैसे प्राप्त हो सकता है ? पक्षान्तरमें यदि वर्णाश्रम-धर्मका परित्याग कर स्वेच्छाचार ग्रहण किया जाय, तो हमारी शारीरिक और मानसिक चेष्टाएँ स्वच्छाचारमें ही घोरतर रूप में प्रवृत्त हो पड़ेंगी और जीवको सदैव दुराचारमें ही निमग्न कर देंगी। साथ ही जीवके हृदयमें भक्ति उदित होनेका कोई लक्षण भी नहीं दीख पड़ता। अतएव वर्णाश्रम-धर्म किंचित् दीर्घसूत्री होनेपर भी भक्ति साधनके अनुकूल रूपमें उसे स्वीकार करना ही कर्त्तव्य है। (क) वैधी भक्तिका अनुशीलन करनेसे कुछ ही दिनोंमें क्रमशः उसकी दीर्घसूत्रिता दूर हो जायगी। धीरे-धीरे उसके अङ्गसमूह भक्तिके अङ्गोंके रूपमें बदल जायेंगे। सबसे पहले वर्णाश्रम-धर्मका भलीभाँति सुन्दररूपसे पालन करते हुए श्रीचैतन्यमहाप्रभुद्वारा बतलायी गयी पाँच प्रकारकी (पञ्चधा) भक्तिका यथाशक्ति अनुशीलन करना चाहिये। उक्त धर्मके जो-जो अङ्ग भक्तिके प्रतिकूल हों, उनका क्रमसे त्याग करते जाना चाहिये। अन्तमें वर्णाश्रम-धर्म शुद्ध और भक्तिमय होकर वैष्णव जीवनका अभिन्न अङ्ग बन जायगा तथा साधन भक्ति के सेवक रूपमें अवस्थित रहेगा; फिर उसका भक्तिके साथ कोई विरोध नहीं रहता, दोनों ही साथ-ही-साथ अविरोध चलते हैं। भक्तिका अनुशीलन करनेसे एक ओर ब्राह्मण जीवन अकिंचनत्व लाभ कर भक्तिद्वारा पवित्र हुए शूद्र-जीवनकी पारमार्थिक समता स्वीकार करेगा—दूसरी ओर शूद्र जीवन भी भगवद्दास्य और भागवतदास्य भाव द्वारा उज्ज्वल होकर अकिंचनीभूत विप्रजीवन की समताको प्राप्त करेगा। उस समय वैष्णव भ्रातृभावकी पवित्रता चारों वर्णोंके जीवनको इतना उज्ज्वल बना देगा कि वह प्रारम्भिक वैकुण्ठ जीवन जैसा प्रतीत होगा। देहात्मबुद्धिसे उत्पन्न अभिमान दूर होनेपर ही जीवमात्रमें समदर्शन संभव है।(ख)

वर्णाश्रम-धर्म और वधी भक्ति

जिस प्रकार वर्णाश्रम-धर्मरूप सेश्वरनैतिक-जीवनके उदय होनेपर निरीश्वर नैतिक-जीवन उसीमें विलीन होकर निर्दोषरूपमें परिणति लाभ करता है, उसी प्रकार सेश्वर नैतिक-जीवन भी वैधी भक्तिके उदय होनेपर वैधभक्तके जीवनमें अपने पूर्व-दोषोंसे रहित होकर एक अपूर्व परिणतिको प्राप्त हो जाता है। पहले वर्णाश्रम-धर्मीका ईश्वर भजन भी दूसरी-दूसरी नीतियोंकी समश्रेणीमें रहता है अर्थात् उसकी दृष्टिमें ईश्वर-उपासना और दूसरी नीतियोंका मूल्य एक समान होता है; परन्तु जब वह वैधभक्त जीवनमें उपस्थित होता है, तब वह ईश्वर-उपासनाको जीवके सारे कर्त्तव्योंसे—सारी नीतियोंसे श्रेष्ठ समझने लगता है। वह

(क) श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात् स्वनुष्ठितात्। स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम्॥ (गीता १८।४७)

(ख) विद्याविनय सम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि। शुनि चैव स्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥ (गीता ५।१८)

वर्णाश्रम-धर्मगत अन्य सारे कर्त्तव्यों और नीतियों को ईश-भजनकी दास-दासियाँ मानने लगता है। पहले-पहले यह परिवर्तन अत्यन्त साधारण रूपमें दिखलायी पड़ता है; परन्तु जिस समय यह निष्ठा प्रबल हो उठती है, उस समय वह जीवनको एक परम उत्कृष्ट आकार प्रदान करती है। वर्णाश्रम-धर्मीके जीवन और वैधभक्तके जीवनमें एक अपूर्व पार्थक्य परिलक्षित होता है।

मनुष्यमात्र ही भक्तिके अधिकारी हैं

शास्त्रोंके अनुसार मानवमात्र ही भक्तिके अधिकारी हैं। भक्ति ही जीवका सहज-धर्म है। इसलिये प्रत्येक जीवको ही भक्तिके लिये प्रयत्न करना चाहिये। (क) इसके द्वारा यह भी स्वीकृत हुआ कि चारों वर्णों और चारों आश्रमोंमें स्थित सभी लोगोंका भक्तिमें अधिकार है। इतना ही नहीं, चारों आश्रमों और वर्णोंके बहिर्भूत अन्त्यजगण भी मनुष्यकी श्रेणीमें होनेके कारण भक्तिके अधिकारी हैं। अन्त्यजगण भक्तिके अधिकारी हैं—यह सत्य है, परन्तु उन्हें भक्ति लाभ करनेके लिये उतनी सुविधा और सुयोग नहीं है, जितना वर्णाश्रमीको प्राप्त है। उनका जन्म, सङ्ग, कर्म और स्वभाव—यह सब इतना अवैध होता है उनका जीवन सदा जड़ासक्त पशु-जीवनके समान होता है। उदरपूर्त्तिके विषयमें वे नितान्त स्वार्थी, परद्रोही और निर्दय होते हैं। उनका हृदय कठोर होता है। इसलिये उनके लिये भक्ति पथ थोड़ा यत्नसाध्य है। (ख) उनका भी भक्ति-तत्त्वमें अधिकार है—यह श्रीहरिदास ठाकुर, नारदके शिष्य व्याध, यीशु, पल आदि भक्तोंके चरित्र की आलोचनासे स्पष्ट होता है। परन्तु उनके जीवनमें यह भी लक्षित होता है कि उन्होंने बड़े कष्ट और विघ्न-बाधाओंको झेल कर भक्ति पथको ग्रहण किया था। यहाँ तक कि वे अधिक दोनों तक भक्त जीवनकी रक्षा करने की सुविधा प्राप्त न सके।

मानव जीवन एक सोपानमय गठन विशेष है

भक्तिमें मनुष्यमात्रका अधिकार है—यह ठीक है, परन्तु वर्णाश्रमान्तर्गत मनुष्यका भक्तिसे पूर्ण अधिकार और सारी सुविधाएँ विशेष रूपसे प्राप्त हैं। इतना विशेष अधिकार और सुविधाएँ विद्यमान रहने पर भी अनेकों वर्णाश्रमचारियोंको बहिर्मुख देखा जाता है। (ग) इसका कारण यह है कि मानव-जीवन एक सोपानमय भवन है। अन्त्यज-जीवन ही सबसे नीचला सोपान है। निरीश्वर नैतिक जीवन दूसरा सोपान है। सेश्वर नैतिक-जीवन तीसरा सोपान है। वैध-भक्त जीवन चौथा सोपान है और भगवदनुराग पूर्ण जीवन ही इन सोपानोंके ऊपर स्थित सुन्दर भवन है। जीव जिस सोपान पर स्थित है, उससे ऊपरवाले सोपान पर चढ़नेकी प्रवृत्ति ही उसका स्वभाव है। इस स्वभाव

(क) न ह्यच्युतं प्रीणयतो बह्वायासोऽसुरात्मजाः। आत्मत्वात् सर्वभूतानां सिद्धत्वादिह सर्वतः॥ (भा० ७।६।६)

(ख) सुखमैन्द्रियकं दैत्या देहयोगेन देहिनाम्। सर्वत्र लभ्यते दैवात् यथा दुःखमयत्नतः।
तत् प्रयासो न कर्तव्यो यतः आयुर्व्ययःपरम्। न तथा विन्दते क्षेमं मुकुन्दचरणाम्बुजम्॥ (भा. ७।६।३-४)

(ग) यन्नामधेयं म्रियमाण आतुरः पतन् स्खलन् वा विवशो गृणन् पुमान्।
विमुक्तकर्मार्गल उत्तमां गतिं प्राप्नोति यक्ष्यन्ति न तं कलौ जनाः॥ (भा. १२।३।४४)

के कारण कोई जीव असमयमें ही व्यस्त होकर—बिना अधिकार अर्जन किये ही एक सोपानसे दूसरे सोपान पर चढ़ न जाय अर्थात् एक सोपान पर भलीभाँति पैर जमाये बिना ही दूसरे सोपान पर आरोहण न करने लगे, इसकी रोक-थाम या सुव्यवस्थाके हेतु ही सोपान-निष्ठा रूप अधिकारकी व्यवस्था है।

नियमाग्रह

जिस समय ऊपरके सोपानपर पदार्पण करनेका अधिकार उपस्थित हो जाता है, उस समय पूर्व निष्ठाको त्याग करना ही कर्त्तव्य है। उसमें आबद्ध रहनेकी वासनाको नियमाग्रह नामक कुसंस्कार कहते हैं। इसी कुसंस्कारके कारण ही अन्त्यज लोग निरीश्वरनैतिक जीवनका अनादर करते हैं, निरीश्वरनैतिकजन काल्पनिक सेश्वरनीतिकी अवज्ञा करते हैं, काल्पनिक सेश्वरनैतिकजन सच्चे सेश्वर नीतिकी अवहेलना करते हैं, सच्चे सेश्वरनैतिकगण भक्तिकी अवज्ञा करते हैं और अन्तमें वैधभक्तजन भी रागात्मिका भक्तिका अनादर किया करते हैं। इसी कुसंस्कारके कारण ही वर्णाश्रममें स्थित बहुत से लोग वैधीभक्तिका आदर नहीं करते *। इससे भक्तिको किसी प्रकारकी हानि नहीं पहुँचती है, हानि केवल अनादर करनेवाले व्यक्तियोंकी ही होती है। ऊपर वाले सोपानोंके व्यक्ति स्वाभाविक रूपसे नीचले सोपानोंमें स्थित जीवोंके लिये व्याकुल रहते हैं; परन्तु जबतक निम्नसोपान स्थित व्यक्तियों का भाग्योदय नहीं होता, तबतक पूर्वनिष्ठा छोड़कर ऊपरवाले सोपान पर आरुढ़ होनेकी रुचि उत्पन्न नहीं होती।

कर्म और भक्ति

वर्णाश्रमधर्मरूप सेश्वरनैतिक जीवन भक्तिके रूपमें बदल जाने पर भक्तजीवन हो पड़ता है। परन्तु जबतक सेश्वरनैतिक जीवन अपने स्व-स्वरूप का परित्याग कर भक्तजीवनस्वरूपको अपना-नहीं लेता, तबतक उसका नाम कर्म ही रहता है। कर्म कदापि भक्तिका अङ्ग नहीं है। कर्मका परिपाक होने पर भक्तिसाधक स्वरूपका उदय होता है। उस समय उसे भक्ति ही कहा जाता है, उस समय उसका नाम कर्म नहीं रहता। भगवत् सम्बन्धिनी श्रद्धा उदित होते ही कर्माधिकार स्थगित हो जाता है। कर्माङ्गके अन्तर्गत जो सन्ध्या-वन्दना आदि आदि होती हैं, वे धर्मनीतिगत कर्त्तव्यकर्मविशेष हैं। वे श्रद्धासे उदित हुई भक्ति-कार्य नहीं हैं। जिस समय भगवत्सम्बन्धिनी श्रद्धा उदित होती है, उस समय भगवदानुगत्यरूप सारे भक्तिकार्योंके प्रति आदरका भाव पैदा हो जाता है। वैसी दशामें यदि शामको कहीं हरिकथा—भागवत पाठ आदि हो रहा हो, तो उसको छोड़कर सन्ध्यावन्दना आदि कर्मोंको करनेकी रुचि नहीं होती। उस समय साधक इस प्रकार स्थिर करता है कि संध्या-वंदना आदिका तात्पर्य या फल हरिकथामें रुचि होना ही है। जब हरिकथामें रुचि ही पैदा हो गयी, तब फिर फल स्वरूप हरिकथाको छोड़कर अन्यान्य-अंगों (संध्यावंदनादि) को ग्रहण करने की आवश्यकता ही क्या है ?

* विप्राद्द्विषड्गुणयुताद्दरविन्दनाभपादारविन्दविमुखात् श्वपचं वरिष्ठम्।
मन्ये तदर्पितमनोवचनेहितार्थप्राणं पुनाति स्वकुलं न तु भूरिमानः॥ (भाग ७।९।१०)

प्रचार प्रसंग

श्रीश्रीव्यास पूजा—

विगत २७ माघ, १० फरवरी १९६६, बृहस्पतिवार व्यासाभिन्न जगद्गुरु ॐविष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी महाराजकी आविर्भाव-तिथि-पूजाके उपलक्ष्यमें श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके भारतव्यापी सभी मठोंमें २५ माघ कृष्ण तृतीया ८ फरवरी १९६६ ई० से आरम्भ कर २७ माघ, कृष्ण पञ्चमी, १० फरवरी १९६६ पर्यन्त तीन दिन श्रीश्रीव्यास पूजा बड़े समारोहके साथ सम्पन्न हुई है। प्रथम दिन माघ कृष्णा पञ्चमीको श्रील सरस्वती प्रभुपादके अन्तरङ्ग प्रिय पार्षदवर परिव्राजकाचार्यवर्य ॐविष्णुपाद परमहंस श्रीश्रीमद्भक्ति प्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज की शुभाविर्भाव-तिथिके दिन सर्वत्र ही हरिसंकीर्तन के माध्यमसे श्रीश्रीव्यासपूजा और तदङ्गीभूत पूजा पञ्चक अर्थात् श्रीकृष्ण-पञ्चक, व्यास-पञ्चक, मध्वादि आचार्य-पञ्चक, सनकादि पञ्चक, श्रीगुरु पञ्चक और तत्त्व-पञ्चककी पूजा और होमके पश्चात् श्रील आचार्यदेवके श्रीश्रीअशोक अभय और श्रीकृष्णप्रेमद श्रीचरणकमलोंमें श्रीश्रीगुरु-सेवकोंने श्रद्धाञ्जलि अर्पित की। शामको विशेष धर्मसभामें हरिकीर्तनके पश्चात् श्रीश्रीव्यासपूजाका महत्व, श्रीश्रीव्यासदेवका दान-वैशिष्ट्य, एवं श्रीश्रीगुरुतत्त्व आदि विषयों पर सारगर्भित भाषण तथा श्रीचैतन्य भागवतसे श्रीश्रीव्यासपूजा-प्रसङ्ग पाठ आदि कार्यक्रम सुन्दर रूपसे सम्पन्न हुए हैं। दूसरे दिन भी सबेरे शाम हरिकीर्तन, भाषण तथा भागवत पाठ हुआ है। तीसरे दिन जगद्गुरु श्रील प्रभुपादकी आविर्भाव-तिथि माघी कृष्ण-पञ्चमी तिथिके दिन उनके श्रीचरणोंमें श्रद्धाञ्जलि अर्पणके पश्चात् विशेष धर्मसभाओंमें श्रील प्रभुपादके अतिमर्त्य जीवन-चरित्र तथा उनकी अप्राकृत शिक्षाओंके सम्बन्धमें विभिन्न वक्ताओंके भाषण दिये। अन्तमें सर्वत्र श्रील प्रभुपादकी आरति और भोग-रागके पश्चात् उपस्थित लोगोंको भगवत् प्रसाद वितरण किया गया।

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ मथुरामें—पूज्यपाद त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्ति कुशल नारसिंह महाराज, त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त मुनि महाराज, त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त नारायण महाराज, त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त भिक्षु महाराज तथा श्रीकृष्णस्वामीदास ब्रह्मचारी आदि वक्ताओंने प्रतिदिन कीर्तन और पुष्पांजलिके पश्चात एवं शामको श्रीगुरु तत्त्व, श्रीवेदव्यासका चरित्र एवं उनकी शिक्षा तथा श्रील प्रभुपादका अतिमर्त्य जीवन चरित्र एवं शिक्षा—इन विषयों पर विशद रूपसे प्रकाश डाला। प्रथम दिन तथा तृतीय दिन उपस्थित सबको महाप्रसाद वितरण किया गया।

श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, नवद्वीपमें—परमाराध्यतम श्रीश्रील आचार्यदेव स्वयं विराजमान रहने के कारण यहाँ की श्रीव्यास पूजा अनुष्ठान विराट

समारोह पूर्वक मनाया गया है। स्वयं श्रील आचार्य-देव एवं अन्यान्य वक्ताओंने उपरोक्त विषयों पर प्रकाश डालते हुए श्रीव्यासपूजाकी आवश्यकता पर बल दिया।

श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ चुँचुड़ामें—त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त त्रिविक्रम महाराजके पौरोहित्यमें यह अनुष्ठान समारोह पूर्वक सम्पन्न हुआ है।

खामटी (मेदिनीपुर) एवं गदामथुरा (२४ परगना) में—उक्त दोनों स्थानोंके गृहस्थ भक्तोंके द्वारा उक्त स्थानोंमें श्रीश्रीव्यासपूजाका अनुष्ठान करनेके लिये विशेष रूपसे श्रील आचार्य देवके श्रीचरणोंमें प्रार्थना पर श्रील आचार्य देवके निर्देशानुसार मठके संन्यासीगण तथा ब्रह्मचारीगण उन दोनों स्थानोंमें विराट, विराट रूपमें समारोह पूर्वक उक्त व्यासपूजाका अनुष्ठान किया है। त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद् भक्ति वेदान्त वामन महाराज, त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त विष्णुदैवत महाराज, त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त उर्द्धमन्थी महाराज, मुरली मोहन ब्रह्मचारी, श्रीमाधवदास ब्रह्मचारी, श्रीरङ्गनाथदास ब्रह्मचारी, श्रीसुदर्शन ब्रह्मचारी व्याकरण तीर्थ, पं० सुरेन्द्रनाथ भट्टाचार्य महोदय और अन्यान्य वैष्णवोंने गदामथुरा (सुन्दर वन, लाट अञ्चल, २४ परगना) में विराट रूपसे तीन दिनों तक श्रीश्रीव्यासपूजा एवं तदङ्गीभूत पञ्चकोंकी पूजा, पुष्पाञ्जलि-प्रदान, कीर्तन एवं भाषणके माध्यमसे सुसम्पन्न किया है। अन्तिम दिनों हजारों श्रद्धालु व्यक्तियोंको महाप्रसाद वितरण किया गया है।

त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त त्रिदण्डि महाराज, श्रीपाद श्रीहरि ब्रह्मचारी, श्रीपाद राघव चैतन्यदास ब्रह्मचारी व्याकरण-तीर्थ, श्रीपाद मुकुन्ददास ब्रह्मचारी, श्रीपाद हरि साधन ब्रह्मचारी, श्रीकनाईदास ब्रह्मचारी आदिने खामिटी (मेदिनीपुर) में श्रीराजेन्द्रनाथ दासाधिकारीके गृहमें उपरोक्त श्रीश्रीव्यास पूजा महोत्सव विराट समारोहके साथ सुसम्पन्न किया है।

इसी प्रकार यह व्यासपूजा श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके अन्यान्य सभी मठों में—श्रीगोलोक गंज गौड़ीय मठ, आसाम एवं श्रीगौड़ीय मठ पिछलदा आदिमें समारोह पूर्वक मनायी गयी है।

श्रीश्रीनवद्वीप धाम परिक्रमा एवं श्रीश्रीगौर जन्मोत्सव

पिछले वर्षोंकी भाँति इस वर्ष भी समग्र भारत व्यापी श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति एवं तदन्तर्गत मठों के प्रतिष्ठाता एवं नियामक "परमहंस स्वामी १०८ श्रीश्रीमद्भक्ति प्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज" की नियामकतामें गत १८ फाल्गुन, २ मार्च १९६६ बुधवारसे २४ फाल्गुन, ८ मार्च, मंगलवार तक श्रीश्रीनवद्वीप धामकी परिक्रमा और श्रीश्रीगौर-जन्मोत्सव विराट समारोहके साथ सुसम्पन्न हुए हैं।

इस वर्ष बङ्गालमें घोर-अन्न संकट एवं राजनैतिक उथल-पुथलके घनेबादलोंकी छायामें इस वर्ष

श्रीधाम-परिक्रमा एवं श्रीगौर-जन्मोत्सव जैसे विराट संकीर्तन यज्ञको जिसमें विराट अन्नमय यज्ञकी भी अपेक्षा होती है— असंभव मानते थे। परन्तु भग. वान विश्वम्भरकी कृपासे नाना प्रकारकी असुवि-धाओंमें भी यह महोत्सव पूर्व वर्षोंकी भाँति ही सुचारू रूपसे सुसम्पन्न हुआ है।

श्रीगौर-जन्मोत्सवके उपलक्ष्यमें फाल्गुनीपूर्णिमा के समय और भी अनेक मठों एवं आश्रमोंद्वारा श्रीधामकी परिक्रमा एवं श्रीगौर जन्मोत्सव मनाया जाता है। परन्तु श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिद्वारा परिचालित परिक्रमा एवं महोत्सव सर्वाधिक विराट और आकर्षक होती है। इस वर्ष अन्य वर्षों की अपेक्षा यात्री कम होने पर भी लगभग २००० यात्री इसमें सम्मिलित हुए थे। परमाराध्यतम श्रील आचार्यदेवके आनुगत्यमें लगभग २०-२२ संन्यासी एवं १०० ब्रह्मचारी इस महोत्सवको सर्वप्रकारसे सफल एवं उसे सदैव हरि-संकीर्तनमय बनानेमें तत्पर थे। उन्होंने अपने उपदेशों, कीर्तनों, भक्ति-ग्रन्थ पाठ-प्रवचनों, भाषणों, और समयोचित निर्देशों द्वारा पूरे महोत्सवको वास्तविक रूपमें हरि संकीर्तनमय कर उस संकीर्तन यज्ञसे श्रीगौरसुन्दरकी यथार्थरूपमें उपासना की है और करायी है। महा-भाव स्वरूपिणी वार्षभानवी श्रीमती राधिकाके भाव और कान्तिको अंगीकार करनेवाले कृष्ण ही कलियुग में श्रीगौराङ्ग महाप्रभुके रूपमें सर्वोत्तम उपास्य तत्त्व हैं तथा बुद्धिमान सज्जन पुरुष एकमात्र हरि-संकीर्तन-यज्ञ द्वारा ही उनकी उपासना करते हैं। ऐसा श्रीमद्भागवतमें निर्द्धारित किया गया है—

कृष्णवर्णं त्विषाऽकृष्णं साङ्गोपाङ्गास्त्रपार्षदम् ।
यज्ञैः संकीर्तन प्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः ॥
(भा० ११।५।३२)

परमाराध्यतम श्रील आचार्यदेवके आनुगत्यमें निम्नलिखित संन्यासी महाराजगण उक्त महोत्सवमें सम्मिलित हुए थे—

(१) त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्ति जीवन जनार्दन महाराज।
(२) ,, ,, वारिध पुरी ,,
(३) ,, ,, भक्तिवेदान्त शुद्धाद्वैती ,,
(४) ,, ,, भक्ति * * पुरी ,,
(५) ,, ,, भक्तिवेदान्त वामन ,,
(६) ,, ,, ,, त्रिविक्रम ,,
(७) ,, ,, ,, नारायण ,,
(८) ,, ,, ,, मुनि ,,
(९) ,, ,, ,, हरिजन ,,
(१०) ,, ,, ,, सज्जन ,,
(११) ,, ,, ,, विष्णुदैवत ,,
(१२) ,, ,, ,, उर्द्धमन्थी ,,

(१३) त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त राध्यान्ती महाराज
(१४) ,, ,, ,, पर्वटक ,,
(१५) ,, ,, ,, परमाद्वैती ,,
(१६) ,, ,, ,, त्रिदण्डी ,,
(१७) ,, श्रीश्रीमद् त्रिगुणातीतदास बाबाजी महाराज
(१८) ,, श्रीश्रीमद् अधोक्षजदास बाबाजी महाराज

इनके अतिरिक्त निम्नलिखित संन्यासीवृन्द आदि महोदयवृन्द महोत्सव के मध्य पधारे थे–परिव्राजकाचार्य श्रीश्रीमद्भक्ति प्रकाश अरण्य महाराज, त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्ति सर्वस्व गिरि महाराज, त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिसौरभ भक्तिसार महाराज, श्रीमद्भक्ति शरण शान्त महाराज, श्रीपाद राघवचैतन्यदास ब्रह्मचारी, श्रीपुरुषोत्तमदास ब्रह्मचारी आदि।

२४ फाल्गुन, २ मार्चको श्रीधाम-परिक्रमाके अधिवासके दिन शामको श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गराधाविनोद विहारीजीकी आरती एवं अधिवास कीर्तनके पश्चात् एक महती धर्मसभामें श्रीश्रीआचार्यदेवने संक्षेपमें परिक्रमा, परिक्रमाका उद्देश्य, तथा श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति द्वारा प्रचलित विधिका वैशिष्ट्य-आदि विषयोंपर पाण्डित्यपूर्ण विचार प्रकट किये। तदनन्तर त्रिदण्डिस्वामी भक्ति वेदान्त नारायण महाराजने उक्त विषयों पर विस्तार पूर्वक प्रकाश डाला। ३ मार्चको श्रीश्रीमायापुरके उद्देश्य से भगवती भागीरथीके तटपर दण्डवत करके श्रीगोद्रुम कुञ्ज, श्रील भक्तिविनोद ठाकुरकी समाधि एवं सुवर्ण विहारका दर्शन करते हुए श्रीनृसिंहदेव पल्लीकी परिक्रमा कर, वहीं महाप्रसाद सेवन कर हरिहर क्षेत्र, मध्यद्वीप, हंसवाहन आदि का दर्शन करते हुए शामको परिक्रमा पार्टी श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठमें लौट आयी। दूसरे दिन समुद्रगढ़ चम्पकहट्ट; तीसरे दिन जह्नु द्वीप, विद्यानगर एवं मामगाछी; चौथे दिन, कोलद्वीप तथा रुद्र द्वीप और पाँचवें दिन श्रीश्रीअन्तर्द्वीप—मायापुरकी परिक्रमा की गयी। सर्वत्र ही संन्यासी महाराजगणने धाममहिमा एवं प्रचुर रूपमें हरिकथामृतका परिवेशन किया। श्रीश्रीआचार्यदेवने श्रीश्रीमायापुर परिक्रमा के दिन श्रीश्रीगौरजन्मस्थान महायोग पीठके मन्दिर-प्रांगणमें तथा श्रील प्रभुपादके श्रीसमाधिमन्दिरमें भाषण देते समय भावावेशमें विह्वल होकर स्वयं अधीर हो उठे। सारे श्रोता उनके अद्भुत भावावेशको देखकर विह्वल होकर रोने लगे। श्रीनृसिंहपल्ली, मामगाछी एवं श्रीमायापुर श्रीजयदेव गोस्वामीके पाट) में तीनों दिन यात्रियोंके अतिरिक्त भी हजारों-हजारों लोगोंको प्रसाद दिया गया।

१ मार्चसे ७ मार्च तक प्रतिदिन शामको श्रीश्रील आचार्यदेवके सभापतित्वमें विराट २ सात धर्म सभाएँ हुईं, जिनमें उपरोक्त सन्यासीवृन्दके अतिरिक्त अन्यान्य वक्ताओंने भी विविध विषयों पर भाषण, प्रवचन एवं उपदेश दिये। अन्तिम दिन की सभामें श्रीश्रील आचार्यदेवने अपने उपदेशके

अन्तमें श्रीपाद हरिपद दासाधिकारी, (श्रीरामपुर), श्रीपाद गजेन्द्रमोक्षण दासाधिकारी, श्रीपाद नारायण दासाधिकारी, श्रीराधेश्याम साहा प्रभृति महोदयोंको इनकी श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके प्रति की गयी विविध प्रकारके सेवाओंके लिये धन्यवाद प्रदान करते हुए उनकी सराहना की ।

७ मार्चको श्रीश्रीगौर-जन्मके उपलक्ष्यमें व्रत रखकर दिन भर श्रीचैतन्य भागवतका परायण हुआ तथा शामको श्रीचैतन्य-चरितामृतसे श्रीगौर-जन्म प्रसंगके पाठके पश्चात् तुमुल हरिसंकीर्तन, शंख, घण्टा, घड़ियाल आदिकी गगनभेदी ध्वनिके मध्य श्रीश्रीगौर-जन्म, अर्चन और भोगराग सम्पन्न हुए । तदनन्तर अनुकल्प किया गया ।

अन्तिम दिन ८ मार्चको सर्वसाधारणके महोत्सवके दिन सवेरे ६ बजेसे रातके ११ बजे तक लगभग २०-२५ हजार व्यक्तियोंको महाप्रसाद वितरण किया गया है ।

—निजस्व संवाददाता

श्रीश्रीआचार्यदेवके शुभाविर्भाव तिथि-पूजाके उपलक्ष्यमें पुष्पांजलि

गुरु केशव तव तेज ही करत तिमिरको नाश ।
तेजवन्त बिरथा करत अपनो अधिक प्रकाश ॥
निखिल जगति हेला परो गुरुवर भक्ति हि पूर ।
ढूँढ़-ढूँढ़ अज्ञानको बहा देत जड़ मूर ॥

वन्दहुँ सुखद केशव चरन ।
अमल शीतल कमल कोमल त्रिविध कलिमल हरन ॥
निखिल आनन्दमूल तमहर सतत असरन सरन ।
ध्यान करतहि सरस हियमें भक्ति दृढ़ विरजरन ॥
सकल सम्पति होत करतल, भजे एकहि बरन ।
कृष्णके उर बसहुँ निशिदिन सर्व संकट जरन ॥

भजन चहे तो जीह भजिले गुरुको नाम ।
श्रवण सुनो तो उपदेश पूर्ण सुनलो ॥
दर्शनकी साध नैन दर्शन गुरुके करो ।
दैविक अचिन्त्य गाथा भाव हिय गुनलो ॥
वसन चहे तो देह चरणन बास कर ।
चुनन चहो तो भक्तिभाव प्रेम चुनलो ॥
सेवाको भाव होई सेवा हरिदासन की ।
करिके जनम लाभ पाइ कृष्ण मन लो ॥

—वागरोदी कृष्णचन्द्र शास्त्री, साहित्यरत्न

निर्याण-संवाद

(क) श्रीमद्भक्ति गौरव वैखानस महाराज

विश्वव्यापी गौड़ीय मठके प्रतिष्ठाता "श्रील प्रभुपाद" के अनुगृहीत प्राचीन संन्यासी परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्ति गौरव वैखानस महाराज विगत ८ वीं माघ, २२ जनवरी, शनिवार के दो पहर दिनमें उड़िसा प्रदेशान्तर्गत गौञ्जु ग्रामस्थ श्रीसारस्वत आश्रममें लगभग नब्बे वर्षकी आयुमें सारस्वत गौड़ीय वैष्णवोंको विरह सागरमें निमज्जित कर नित्यलीलामें प्रवेश कर गये। ये संस्कृत भाषाके धुरन्धर विद्वान थे। इनके विषयमें अगली संख्यामें विस्तार पूर्वक प्रकाशित होगा।

(ख) श्रीमद् त्रिगुणातीत दास बाबाजी महाराज

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके शाखामठ श्रीसिद्धवाटी गौड़ीय मठके मठ-रक्षक श्रीमद् त्रिगुणातीत दास बाबाजी महाराज गत २४ मार्च १९६६, रविवारके दिनके ३.२५ बजे श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, श्रीधाम नवद्वीपमें श्रीश्रील आचार्यदेव और अन्यान्य संन्यासी-ब्रह्मचारियोंसे परिवेष्टित होकर संकीर्तनके बीच सबको विरह समुद्रमें निमज्जित करते हुए नित्य लीलामें प्रविष्ट होकर नित्यधाममें गमन किये हैं। इस समय उनकी आयु लगभग ७५ वर्षकी थी। ये विश्व विख्यात श्रील प्रभुपादके हरिनामाश्रित एवं दीक्षित शिष्य थे। पुनः श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके संस्थापक आचार्यसे बाबाजी वेष ग्रहण कर समितिके अन्तर्गत सिद्धवाटी गौड़ीय मठमें भजन करते थे। वे अबाल-ब्रह्मचारी थे। अगली संख्यामें इनके जीवन चरित्रके सम्बन्धमें प्रकाशित किया जायगा।

श्रीभागवत-पत्रिकाके सम्बन्धमें विवरण

(१) प्रकाशनका स्थान—श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ मथुरा।

(२) प्रकाशनकी अवधि—मासिक।

(३) मुद्रकका नाम—श्रीहेमेन्द्रकुमार।
राष्ट्रगत सम्बन्ध—हिन्दू (भारतीय)।
पता—साधन प्रेस, डैम्पियर नगर, मथुरा।

(४) प्रकाशकका नाम—श्रीकुञ्जविहारी ब्रह्मचारी।
राष्ट्रगत सम्बन्ध—हिन्दू (गौड़ीय वैष्णव)।
पता—श्रीकेशवजी गौड़ीयमठ मथुरा।

(५) सम्पादकका नाम—त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त नारायण महाराज।
राष्ट्रगत-सम्बन्ध—हिन्दू (गौड़ीय वैष्णव)।
पता—श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ मथुरा।

(६) पत्रिका का स्वत्वाधिकारी—श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके तरफसे उसके प्रतिष्ठाता और नियामक परमहंस स्वामी श्रीमद्भक्ति प्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज। समिति अनरेजिस्टर्ड।

मैं कुञ्जविहारी ब्रह्मचारी, इसके द्वारा घोषित करता हूँ कि ऊपर लिखी बातें मेरी जानकारीमें और विश्वासके अनुसार सत्य हैं।

१५ अप्रेल १९६६

—कुञ्जविहारी ब्रह्मचारी